INTELLIGENTSIA
International Journal of Multidisciplinary Research
ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026
Intelligentsia International Journal Of Multidisciplinary Research

साहित्य एवं पर्यावरण: एक विमर्श

मिथलेश दास
शोध छात्र
हिंदी विभाग
राधा गोविंद विश्विद्यालय, रामगढ़, झारखण्ड

शोध सारांश

साहित्य और पर्यावरण का संबंध अत्यंत प्राचीन, गहन तथा परस्पर पूरक रहा है। साहित्य मानव जीवन, प्रकृति और समाज के अंतर्संबंधों का सृजनात्मक दस्तावेज है, जबकि पर्यावरण मानव अस्तित्व का आधार है। वर्तमान समय में बढ़ते औद्योगीकरण, शहरीकरण, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता के ह्रास, वनों की कटाई तथा प्रदूषण ने पर्यावरणीय संकट को वैश्विक चुनौती बना दिया है। ऐसे समय में साहित्य केवल सौंदर्यबोध का माध्यम न होकर पर्यावरणीय चेतना, संरक्षण की भावना तथा प्रकृति के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व के विकास का प्रभावी साधन बनकर उभरता है। भारतीय साहित्यिक परंपरा में वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत तथा कालिदास के साहित्य में प्रकृति को जीवन और संस्कृति का अभिन्न अंग माना गया है। आधुनिक हिंदी साहित्य में सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, प्रेमचंद और अज्ञेय जैसे साहित्यकारों ने प्रकृति, पर्यावरणीय संकट तथा विकास और विनाश के द्वंद्व को संवेदनात्मक रूप से अभिव्यक्त किया है। समकालीन साहित्य में पर्यावरणीय आलोचना मानव-केंद्रित दृष्टिकोण के स्थान पर पारिस्थितिकी-केंद्रित दृष्टि को स्थापित करते हुए पर्यावरणीय न्याय और सतत विकास की अवधारणा को सुदृढ़ करती है। झारखंड के साहित्यकारों ने पर्यावरणीय विमर्श को विशेष समृद्धि प्रदान की है। पीटर पॉल एक्का, डॉ. रामदयाल मुंडा, रोज़ केरकेट्टा, वंदना टेटे, जसिंता केरकेट्टा, निर्मला पुतुल तथा अनुज लुगुन ने जल, जंगल और जमीन से जुड़े आदिवासी जीवन, खनन, विस्थापन तथा वन-नाश की समस्याओं को अपनी रचनाओं में प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। इनकी रचनाओं में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि जीवन, संस्कृति और संघर्ष का जीवंत आधार है। प्रस्तुत अध्ययन साहित्य और पर्यावरण के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित करता है कि साहित्य पर्यावरणीय जागरूकता, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा सतत विकास की भावना को सुदृढ़ करने का प्रभावी माध्यम है। अतः पर्यावरण संरक्षण की दिशा में साहित्य की भूमिका केवल प्रेरणात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक दायित्व के रूप में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कुंजी शब्द: पर्यावरणीय साहित्य, प्रकृति-मानव संबंध, पर्यावरणीय चेतना, सतत विकास, आदिवासी पर्यावरण विमर्श।

प्रकाशन समयरेखा:
मूल पाण्डुलिपि प्राप्त – 26 फरवरी, 2026; सहकर्मी समीक्षण पूर्ण – 27 फरवरी, 2026; संशोधित पाण्डुलिपि प्राप्त – 04 मार्च, 2026; स्वीकृत एवं प्रकाशित – 07 मार्च, 2026
अनुशंसित संदर्भ
दास, मिथलेश. (2026). साहित्य एवं पर्यावरण: एक विमर्श. इंटेलिजेंटसिया इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, 2(1), 86–97.

ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026

परिचय

साहित्य और पर्यावरण का संबंध मानव सभ्यता के आरंभ से ही अत्यंत घनिष्ठ, जीवंत और परस्पर पूरक रहा है। साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ-साथ उसकी सांस्कृतिक चेतना, जीवन-मूल्यों, प्रकृति-बोध तथा मानवीय संवेदनाओं का सृजनात्मक दस्तावेज भी है। 'साहित्य' शब्द का अर्थ है जो समाज के हित (सहित) में हो। यह केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि मानव जीवन के विविध अनुभवों, विचारों, संघर्षों तथा प्रकृति के साथ उसके संबंधों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्य व्यक्ति और समाज को संवेदनशील बनाते हुए नैतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक मूल्यों का संरक्षण करता है। प्रकृति के प्रति प्रेम, करुणा और उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने में भी साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पर्यावरण से अभिप्राय उन सभी प्राकृतिक, जैविक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक तत्वों से है जो मानव जीवन को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इसमें जल, वायु, भूमि, वन, पर्वत, नदियाँ, जीव-जंतु, वनस्पतियाँ तथा समस्त जैव-विविधता सम्मिलित हैं। पर्यावरण केवल भौतिक संसाधनों का समूह नहीं, बल्कि जीवन का आधार तथा समस्त प्राणियों के अस्तित्व का मूलाधार है। मानव और प्रकृति का संबंध सदैव परस्पर निर्भरता का रहा है। प्रकृति मानव को भोजन, जल, वायु, औषधि, ऊर्जा तथा जीवनोपयोगी संसाधन प्रदान करती है, जबकि मानव का दायित्व है कि वह प्राकृतिक संतुलन बनाए रखते हुए उसके संरक्षण और संवर्धन में योगदान दे। जब यह संतुलन बिगड़ता है, तब पर्यावरणीय संकट उत्पन्न होता है।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को सदैव पूजनीय और जीवनदायिनी शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। वैदिक साहित्य में पृथ्वी को माता, आकाश को पिता तथा नदियों, पर्वतों, वृक्षों और वनस्पतियों को देवतुल्य माना गया है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत तथा पुराणों में प्रकृति के प्रति सम्मान, संरक्षण और सह-अस्तित्व की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारतीय दर्शन का मूल सिद्धांत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' समस्त जीव-जगत और प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित करने का संदेश देता है। यही कारण है कि भारतीय लोकजीवन, पर्व-त्योहार, कृषि संस्कृति तथा लोकसाहित्य में प्रकृति के प्रति गहरा अनुराग विद्यमान है। किन्तु आधुनिक युग में तीव्र औद्योगीकरण, शहरीकरण, अनियंत्रित उपभोक्तावाद, प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, वनों की कटाई, खनन, प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन तथा जैव-विविधता के क्षरण ने वैश्विक पर्यावरणीय संकट को जन्म दिया है। पृथ्वी का बढ़ता तापमान, ग्लेशियरों का पिघलना, जल-संकट, वायु प्रदूषण, प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती आवृत्ति तथा असंख्य वन्य प्रजातियों का विलुप्त होना मानव अस्तित्व के लिए गंभीर चुनौती बन चुके हैं। इन परिस्थितियों में पर्यावरण संरक्षण केवल वैज्ञानिक या प्रशासनिक विषय नहीं रह गया है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक उत्तरदायित्व का विषय बन गया है। इसी संदर्भ में साहित्य में पर्यावरण विमर्श की आवश्यकता और प्रासंगिकता अत्यंत बढ़ जाती है। पर्यावरणीय विमर्श साहित्य और प्रकृति के अंतर्संबंधों का अध्ययन करते हुए मानव-केंद्रित दृष्टिकोण के स्थान पर पारिस्थितिकी-केंद्रित दृष्टि को विकसित करता है। यह साहित्य के माध्यम से पर्यावरणीय संकट के कारणों, उसके सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों तथा संरक्षण के उपायों पर विचार करता है। समकालीन हिंदी साहित्य, विशेषकर आदिवासी और क्षेत्रीय साहित्य में जल, जंगल, जमीन, विस्थापन, खनन, पर्यावरणीय न्याय तथा सतत विकास जैसे प्रश्न प्रमुखता से उभरकर सामने आए हैं। इसलिए साहित्य आज केवल प्रकृति का सौंदर्य-

Copyright © IIJMR 2026, All rights reserved

ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026

वर्णन नहीं करता, बल्कि पर्यावरणीय चेतना जागृत कर समाज को प्रकृति के प्रति उत्तरदायी बनाने का प्रभावी माध्यम बन गया है। इस दृष्टि से साहित्य एवं पर्यावरण का अध्ययन वर्तमान समय की एक महत्वपूर्ण और अत्यंत प्रासंगिक बौद्धिक आवश्यकता है।

साहित्य एवं पर्यावरण में संबंध

साहित्य और पर्यावरण का संबंध अत्यंत प्राचीन, घनिष्ठ तथा परस्पर निर्भर रहा है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही प्रकृति ने मनुष्य के जीवन, संस्कृति, आस्था और सृजन को निरंतर प्रभावित किया है। साहित्य मानव के अनुभवों, भावनाओं तथा सामाजिक यथार्थ का सृजनात्मक दस्तावेज है, जबकि पर्यावरण मानव जीवन के अस्तित्व का मूल आधार है। इसलिए साहित्य में प्रकृति केवल सौंदर्य का विषय नहीं, बल्कि जीवन, संस्कृति, दर्शन और सामाजिक चेतना का अभिन्न अंग रही है। प्रत्येक युग का साहित्य अपने समय के पर्यावरणीय परिवेश, प्राकृतिक संसाधनों, मानव-प्रकृति संबंधों तथा बदलती परिस्थितियों को अपने भीतर समाहित करता है। आधुनिक समय में जब पर्यावरणीय संकट विश्वव्यापी चुनौती बन चुका है, तब साहित्य पर्यावरण संरक्षण की चेतना जगाने और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व विकसित करने का प्रभावी माध्यम बनकर उभरा है **(उपाध्याय, 2024)**[1] ।

(क) साहित्य और पर्यावरण का ऐतिहासिक संबंध

मानव इतिहास के प्रारंभिक काल से ही प्रकृति और साहित्य का अटूट संबंध रहा है। आदिम मानव का जीवन पूर्णतः प्रकृति पर आधारित था। उसकी जीविका, संस्कृति, लोकगीत, मिथक, कथाएँ और धार्मिक विश्वास प्रकृति से जुड़े हुए थे। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ, साहित्य ने भी प्रकृति के विभिन्न रूपों वन, पर्वत, नदियाँ, ऋतुएँ, पशु-पक्षी तथा आकाशीय तत्वों को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाया। विश्व के लगभग सभी साहित्यिक परंपराओं में प्रकृति को जीवनदायिनी शक्ति, प्रेरणा स्रोत तथा सौंदर्य के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। इस प्रकार साहित्य और पर्यावरण का संबंध केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं रहा, बल्कि मानव सभ्यता और सांस्कृतिक विकास के साथ निरंतर विकसित होता रहा है।

(ख) वैदिक एवं प्राचीन साहित्य में प्रकृति का चित्रण

भारतीय साहित्यिक परंपरा में प्रकृति को अत्यंत पवित्र और पूजनीय माना गया है। वैदिक साहित्य विशेष रूप से प्रकृति-केंद्रित है। ऋग्वेद में सूर्य, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, उषा तथा नदियों की स्तुति करते हुए उन्हें देवत्व प्रदान किया गया है। अथर्ववेद का प्रसिद्ध *पृथ्वी सूक्त* पृथ्वी के संरक्षण तथा उसके प्रति कृतज्ञता की भावना का उत्कृष्ट उदाहरण है। उपनिषदों में समस्त सृष्टि को एक ही ब्रह्म का स्वरूप माना गया है, जिससे मानव और प्रकृति के बीच आध्यात्मिक एकता स्थापित होती है। रामायण में वन केवल कथा का स्थल नहीं, बल्कि आदर्श जीवन, तप, त्याग और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व का प्रतीक है। महाभारत में वन, नदियाँ और पर्वत मानवीय जीवन के अभिन्न अंग के रूप में चित्रित हुए हैं। महर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास ने प्रकृति के माध्यम से मानवीय भावनाओं और जीवन-दर्शन को अत्यंत प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया है।

Copyright © IIJMR 2026, All rights reserved

ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026

(ग) संस्कृत एवं हिंदी साहित्य में पर्यावरण चेतना

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास को प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। उनकी कृतियाँ 'ऋतुसंहार', 'मेघदूत', 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' तथा 'कुमारसंभव' प्रकृति-सौंदर्य, ऋतु-परिवर्तन तथा मानव और प्रकृति के भावनात्मक संबंध का अद्‌भुत चित्रण प्रस्तुत करती हैं। कालिदास की दृष्टि में प्रकृति केवल दृश्य सौंदर्य नहीं, बल्कि जीवंत संवेदना और मानवीय भावनाओं की सहचरी है। हिंदी साहित्य में आदिकाल से आधुनिक काल तक प्रकृति का विविध रूपों में चित्रण मिलता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', अज्ञेय तथा प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों ने प्रकृति को जीवन, सौंदर्य, संवेदना तथा सामाजिक यथार्थ से जोड़कर प्रस्तुत किया। विशेष रूप से छायावादी कवियों ने प्रकृति के मानवीकरण के माध्यम से उसकी आत्मीयता और आध्यात्मिकता को अभिव्यक्ति दी, जबकि आधुनिक साहित्यकारों ने पर्यावरणीय संकट, औद्योगीकरण और विकास के दुष्प्रभावों को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया।

(घ) भक्ति एवं आधुनिक साहित्य में प्रकृति का स्वरूप

भक्ति साहित्य में प्रकृति ईश्वर की सृष्टि और आध्यात्मिक अनुभूति का माध्यम है। कबीर ने प्रकृति के प्रतीकों के माध्यम से आध्यात्मिक सत्य को व्यक्त किया, जबकि सूरदास और तुलसीदास ने वन, नदी, पर्वत, पुष्प और ऋतुओं का उपयोग भक्तिभाव और मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए किया। मीरा के पदों में भी प्रकृति भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनती है। आधुनिक साहित्य में प्रकृति का स्वरूप अधिक यथार्थवादी और सामाजिक हो गया है। अब साहित्य केवल प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन नहीं करता, बल्कि पर्यावरण प्रदूषण, जल संकट, वनों की कटाई, खनन, औद्योगीकरण, जलवायु परिवर्तन, विस्थापन तथा जैव-विविधता के संकट जैसे गंभीर प्रश्नों को भी उठाता है। समकालीन हिंदी साहित्य तथा विशेषकर आदिवासी साहित्य में जल, जंगल और जमीन के संघर्ष, पर्यावरणीय न्याय तथा सतत विकास की अवधारणाएँ प्रमुखता से उभरकर सामने आई हैं।

(ङ) साहित्य द्वारा पर्यावरण संरक्षण का संदेश

साहित्य समाज में संवेदनशीलता और नैतिक चेतना का विकास करता है। पर्यावरणीय साहित्य मनुष्य को यह संदेश देता है कि प्रकृति केवल उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि जीवन की आधारशिला है। अनेक कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, लोकगीत और नाटक वृक्षारोपण, जल संरक्षण, वन संरक्षण, जैव-विविधता की रक्षा तथा प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग का संदेश देते हैं। साहित्य मनुष्य को प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व, संतुलित विकास और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व की शिक्षा देता है। इस प्रकार साहित्य पर्यावरण संरक्षण के लिए सामाजिक जागरूकता उत्पन्न करने का प्रभावी सांस्कृतिक माध्यम बन जाता है।

(च) पारिस्थितिक आलोचना की संकल्पना

पारिस्थितिक आलोचना साहित्य और पर्यावरण के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन करने वाली आधुनिक साहित्यिक आलोचना की एक महत्वपूर्ण पद्धति है। इसका विकास मुख्यतः बीसवीं शताब्दी के

Copyright © IIJMR 2026, All rights reserved

ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026

उत्तरार्द्ध में पर्यावरणीय संकटों और प्रकृति संरक्षण के प्रति बढ़ती वैश्विक चिंताओं के परिणामस्वरूप हुआ। इस आलोचनात्मक दृष्टिकोण के अंतर्गत साहित्यिक कृतियों में प्रकृति, पर्यावरण, पारिस्थितिकी, जैव-विविधता, प्राकृतिक संसाधनों, पर्यावरणीय संकटों तथा मानव और प्रकृति के संबंधों का गहन विश्लेषण किया जाता है। पारिस्थितिक आलोचना मानव-केंद्रित दृष्टिकोण के स्थान पर प्रकृति-केंद्रित अथवा पारिस्थितिकी-केंद्रित दृष्टिकोण को अधिक महत्त्व प्रदान करती है। इसके अनुसार मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका अभिन्न अंग है और पृथ्वी पर विद्यमान प्रत्येक जीव तथा प्राकृतिक तत्व का अपना स्वतंत्र अस्तित्व और महत्त्व है। यह दृष्टिकोण मानव और प्रकृति के मध्य संतुलित, संवेदनशील तथा सह-अस्तित्व पर आधारित संबंधों की स्थापना पर बल देता है। इस आलोचनात्मक पद्धति का प्रमुख उद्देश्य यह समझना है कि साहित्य किस प्रकार पर्यावरणीय चेतना का विकास करता है, प्रकृति संरक्षण के प्रति समाज को जागरूक बनाता है, प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग की प्रेरणा देता है तथा सतत विकास की अवधारणा को सुदृढ़ करता है। वर्तमान समय में पारिस्थितिक आलोचना साहित्य अध्ययन की एक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है। समकालीन हिन्दी तथा भारतीय साहित्य में यह पर्यावरणीय विमर्श को नई वैचारिक दिशा प्रदान करते हुए प्रकृति, संस्कृति और मानव जीवन के पारस्परिक संबंधों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझने का अवसर उपलब्ध कराती है।

इस प्रकार साहित्य और पर्यावरण का संबंध केवल सौंदर्यबोध, प्रेरणा अथवा प्रकृति-चित्रण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन, संस्कृति, नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा पृथ्वी के भविष्य से गहराई से जुड़ा हुआ है। वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में साहित्य पर्यावरण संरक्षण, पारिस्थितिक संतुलन, जैव-विविधता के संवर्धन तथा सतत विकास की चेतना को जन-जन तक पहुँचाने का एक प्रभावशाली माध्यम बनकर उभरा है। इसलिए आज साहित्य केवल समाज का दर्पण ही नहीं, बल्कि पर्यावरणीय संवेदना, संरक्षण और परिवर्तन का सशक्त वाहक भी है।

साहित्य में समकालीन पर्यावरणीय मुद्दे

समकालीन विश्व अभूतपूर्व पर्यावरणीय संकट के दौर से गुजर रहा है। जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, वनों की कटाई, जैव-विविधता का ह्रास, प्रदूषण, अनियंत्रित शहरीकरण तथा औद्योगीकरण जैसी समस्याएँ मानव सभ्यता के अस्तित्व के लिए गंभीर चुनौती बन चुकी हैं। इन परिस्थितियों में साहित्य केवल प्रकृति के सौंदर्य का चित्रण करने तक सीमित नहीं है, बल्कि पर्यावरणीय संकट के कारणों, उसके सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों तथा संभावित समाधानों पर भी गंभीर विमर्श प्रस्तुत करता है। समकालीन साहित्य पर्यावरणीय चेतना का सशक्त माध्यम बनकर मानव और प्रकृति के बीच संतुलित संबंध स्थापित करने का संदेश देता है। विशेष रूप से पर्यावरणीय आलोचना ने साहित्य को प्रकृति-केंद्रित दृष्टिकोण प्रदान करते हुए पर्यावरण संरक्षण की दिशा में नई वैचारिक चेतना विकसित की है **(चतुर्वेदी और सिंह ,2023)[2]**।

(क) जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन वर्तमान समय की सबसे गंभीर वैश्विक समस्या है। मानवीय गतिविधियों, विशेषकर जीवाश्म ईंधनों के अत्यधिक उपयोग, औद्योगिक उत्सर्जन तथा वनों की कटाई के कारण पृथ्वी

Copyright © IIJMR 2026, All rights reserved

ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026

की जलवायु में तीव्र परिवर्तन हो रहा है। अनियमित वर्षा, अत्यधिक गर्मी, सूखा, बाढ़, चक्रवात तथा ग्लेशियरों का पिघलना इसके प्रमुख परिणाम हैं। समकालीन साहित्य इन परिवर्तनों को केवल वैज्ञानिक तथ्य के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय त्रासदी के रूप में प्रस्तुत करता है। अनेक कविताएँ, उपन्यास और कहानियाँ जलवायु परिवर्तन से प्रभावित किसानों, आदिवासियों तथा तटीय क्षेत्रों के लोगों के संघर्ष को स्वर देती हैं और प्रकृति के साथ संतुलित जीवनशैली अपनाने का संदेश देती हैं।

(ख) ग्लोबल वार्मिंग

ग्लोबल वार्मिंग जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण है, जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी का औसत तापमान निरंतर बढ़ रहा है। इसके कारण हिमनदों का पिघलना, समुद्र के जलस्तर में वृद्धि तथा मौसम चक्र में असंतुलन उत्पन्न हो रहा है। साहित्य इस समस्या को मानव की असीमित उपभोक्तावादी प्रवृत्ति और प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन का परिणाम मानता है। समकालीन रचनाकार ग्लोबल वार्मिंग को विकास के असंतुलित मॉडल की आलोचना के रूप में प्रस्तुत करते हुए पर्यावरण-अनुकूल विकास की आवश्यकता पर बल देते हैं।

(ग) वनों की कटाई

वन पृथ्वी के 'फेफड़े' माने जाते हैं, क्योंकि वे जैव-विविधता के संरक्षण, जलवायु संतुलन तथा मानव जीवन के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराते हैं। किंतु विकास परियोजनाओं, खनन, सड़क निर्माण तथा शहरी विस्तार के कारण बड़े पैमाने पर वनों का विनाश हो रहा है। साहित्य में वन केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि संस्कृति, सभ्यता और जीवन के प्रतीक हैं। विशेष रूप से हिंदी तथा आदिवासी साहित्य में जंगलों की कटाई से उत्पन्न विस्थापन, सांस्कृतिक विघटन और पर्यावरणीय असंतुलन का मार्मिक चित्रण मिलता है। साहित्य यह संदेश देता है कि वन संरक्षण के बिना मानव सभ्यता का भविष्य सुरक्षित नहीं रह सकता।

(घ) जैव-विविधता का ह्रास

पौधों, पशुओं और सूक्ष्म जीवों की विविधता पृथ्वी के पारिस्थितिक संतुलन का आधार है। वर्तमान समय में प्राकृतिक आवासों के विनाश, प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन तथा अत्यधिक संसाधन दोहन के कारण अनेक जीव-जंतु और वनस्पति प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर हैं। साहित्य इस संकट को मानव और प्रकृति के टूटते संबंधों के रूप में देखता है। समकालीन कविताओं, कहानियों और लोकसाहित्य में पक्षियों, नदियों, वृक्षों और वन्यजीवों के लुप्त होते संसार के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है।

(ङ) जल एवं वायु प्रदूषण

स्वच्छ जल और शुद्ध वायु प्रत्येक जीव के अस्तित्व के लिए अनिवार्य हैं। किंतु औद्योगिक अपशिष्ट, रासायनिक उर्वरकों, प्लास्टिक कचरे तथा वाहनों से निकलने वाले धुएँ ने जल और वायु दोनों को गंभीर रूप से प्रदूषित कर दिया है। अनेक नदियाँ प्रदूषण के कारण अपना प्राकृतिक स्वरूप खो रही हैं और

Copyright © IIJMR 2026, All rights reserved

ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026

महानगरों की वायु स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा बन चुकी है। समकालीन साहित्य इन समस्याओं को सामाजिक अन्याय और विकास की विकृत अवधारणा से जोड़कर देखता है। साहित्यकार मानव को प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक होने का संदेश देते हैं।

(च) प्लास्टिक प्रदूषण

प्लास्टिक आधुनिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है, किंतु इसका अनियंत्रित उपयोग पर्यावरण के लिए गंभीर संकट उत्पन्न कर रहा है। प्लास्टिक अपघटित नहीं होता, जिससे भूमि, जल और समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र पर दीर्घकालिक दुष्प्रभाव पड़ते हैं। समुद्री जीवों, पक्षियों तथा अन्य प्राणियों का जीवन भी इससे प्रभावित हो रहा है। समकालीन साहित्य इस समस्या को आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति का दुष्परिणाम मानते हुए पुनर्चक्रण, एकल-उपयोग प्लास्टिक पर नियंत्रण तथा पर्यावरण-अनुकूल जीवनशैली अपनाने की आवश्यकता पर बल देता है।

(छ) शहरीकरण एवं औद्योगीकरण

आधुनिक विकास मॉडल में तीव्र शहरीकरण और औद्योगीकरण को प्रगति का प्रतीक माना गया है, किंतु इसके कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, कृषि भूमि का क्षरण, जल स्रोतों का विनाश तथा प्रदूषण जैसी गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। साहित्य इस विकास मॉडल के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों का विश्लेषण करता है। विशेष रूप से खनन क्षेत्रों, औद्योगिक नगरों तथा महानगरों पर आधारित साहित्य में विस्थापन, पर्यावरणीय असंतुलन, सामाजिक असमानता तथा मानवीय संवेदनाओं के क्षरण का यथार्थ चित्रण मिलता है।

(ज) पर्यावरण न्याय एवं सतत विकास

पर्यावरणीय न्याय का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय को स्वच्छ एवं सुरक्षित पर्यावरण में जीवन जीने का समान अधिकार प्राप्त हो। पर्यावरणीय संकट का सबसे अधिक प्रभाव गरीबों, किसानों, आदिवासियों तथा हाशिए पर रहने वाले समुदायों पर पड़ता है। साहित्य इन वर्गों की पीड़ा और संघर्ष को अभिव्यक्ति देते हुए पर्यावरणीय न्याय की मांग करता है। इसी प्रकार सतत विकास की अवधारणा वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के अधिकारों की रक्षा पर बल देती है। समकालीन साहित्य संतुलित विकास, संसाधनों के न्यायपूर्ण उपयोग तथा प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना को सुदृढ़ करता है **(जोशी, 2025)**[3]।

(झ) आदिवासी साहित्य और पर्यावरण

भारतीय साहित्य में आदिवासी साहित्य पर्यावरणीय विमर्श की सबसे सशक्त धाराओं में से एक है। आदिवासी समुदाय का जीवन जल, जंगल और जमीन से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है **(टेटे, 2013)**[4]। उनके लिए प्रकृति केवल संसाधन नहीं, बल्कि संस्कृति, पहचान, आस्था और जीवन का आधार है।

Copyright © IIJMR 2026, All rights reserved

ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026

इसलिए खनन, बाँध, औद्योगीकरण और वनों की कटाई से उत्पन्न विस्थापन का सबसे अधिक प्रभाव इन्हीं समुदायों पर पड़ता है।

झारखंड के साहित्यकार डॉ. रामदयाल मुंडा, पीटर पॉल एक्का, रोज़ केरकेट्टा, वंदना टेटे, जसिंता केरकेट्टा, निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन तथा अन्य आदिवासी रचनाकारों ने अपनी कविताओं, कहानियों और लेखों में जल, जंगल और जमीन के प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया है। उनकी रचनाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि पर्यावरण संरक्षण केवल प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा का प्रश्न नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की रक्षा का भी प्रश्न है। आदिवासी साहित्य प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व, सामुदायिक जीवन, पारिस्थितिक संतुलन तथा टिकाऊ जीवन-पद्धति का संदेश देता है और आधुनिक विकास मॉडल की सीमाओं पर गंभीर प्रश्नचिह्न भी लगाता है।

इस प्रकार समकालीन साहित्य पर्यावरणीय समस्याओं का केवल चित्रण नहीं करता, बल्कि उनके कारणों का विश्लेषण करते हुए मानव और प्रकृति के बीच संतुलित, न्यायपूर्ण तथा टिकाऊ संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देता है। वर्तमान वैश्विक संकट के संदर्भ में साहित्य पर्यावरणीय चेतना, सामाजिक उत्तरदायित्व और सतत विकास की भावना को सुदृढ़ करने वाला एक प्रभावशाली सांस्कृतिक माध्यम सिद्ध हो रहा है।

पर्यावरणीय मुद्दों की साहित्यिक अभिव्यक्ति

साहित्य समाज की चेतना, संवेदना और अनुभवों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार समाज समय-समय पर नई चुनौतियों का सामना करता है, उसी प्रकार साहित्य भी उन चुनौतियों को अपने कथ्य का हिस्सा बनाता है। वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट मानव सभ्यता के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। इसलिए समकालीन साहित्य में पर्यावरण केवल सौंदर्य और प्रेरणा का विषय नहीं, बल्कि सामाजिक सरोकार, सांस्कृतिक अस्मिता, पर्यावरणीय न्याय तथा मानव अस्तित्व से जुड़ा गंभीर विमर्श बन चुका है। कविता, कहानी, उपन्यास, लोक साहित्य तथा जनजातीय साहित्य जैसी विभिन्न साहित्यिक विधाओं में पर्यावरणीय चेतना का व्यापक और बहुआयामी स्वरूप देखने को मिलता है **(द्विवेदी, 2026)[5]**।

(क) कविता में प्रकृति और पर्यावरण

भारतीय काव्य परंपरा में प्रकृति का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। वैदिक ऋचाओं से लेकर आधुनिक हिंदी कविता तक प्रकृति को जीवन, सौंदर्य, प्रेम, आध्यात्मिकता तथा मानवीय संवेदनाओं के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है **(भट्ट, 2025)[6]**। छायावादी कवियों जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा तथा सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने प्रकृति को मानवीय भावनाओं का सहचर और आत्मिक अनुभव का माध्यम बनाया। विशेष रूप से पंत की कविताओं में हिमालय, वन, पुष्प, झरने और ऋतुओं का अत्यंत सजीव चित्रण मिलता है। समकालीन कविता में प्रकृति का स्वरूप बदलता हुआ दिखाई देता है। अब कवि केवल प्रकृति की सुंदरता का वर्णन नहीं करते, बल्कि पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, नदियों के प्रदूषण तथा जैव-विविधता के संकट जैसे विषयों को भी

Copyright © IIJMR 2026, All rights reserved

ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026

प्रमुखता से उठाते हैं । जसिंता केरकेट्टा, अनुज लुगुन, निर्मला पुतुल और अन्य समकालीन कवियों की रचनाओं में प्रकृति आदिवासी जीवन, अस्मिता और संघर्ष का प्रतीक बनकर उभरती है। उनकी कविताएँ पर्यावरणीय विनाश के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर भी प्रस्तुत करती हैं।

(ख) कहानी एवं उपन्यासों में पर्यावरण संकट

हिंदी कहानी और उपन्यास ने पर्यावरणीय संकट को सामाजिक यथार्थ के रूप में प्रस्तुत किया है। आधुनिक औद्योगीकरण, खनन, शहरीकरण, बाँध निर्माण तथा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से उत्पन्न विस्थापन और पर्यावरणीय असंतुलन अनेक साहित्यकारों की रचनाओं का प्रमुख विषय रहे हैं। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में ग्रामीण जीवन, कृषि संस्कृति तथा प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंधों को यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया। बाद के साहित्यकारों ने विकास के नाम पर हो रहे पर्यावरणीय विनाश को अधिक तीव्रता से अभिव्यक्त किया। झारखंड के साहित्यकार पीटर पॉल एक्का की कहानियाँ खनन, औद्योगिक प्रदूषण, जंगलों के विनाश तथा आदिवासी विस्थापन की त्रासदी को सामने लाती हैं। अनेक समकालीन उपन्यासों में जल संकट, भूमि अधिग्रहण, पर्यावरणीय अन्याय तथा विकास की विसंगतियों का गंभीर विश्लेषण मिलता है। इन रचनाओं के माध्यम से साहित्य समाज को यह चेतावनी देता है कि प्रकृति का अंधाधुंध दोहन अंततः मानव सभ्यता के लिए विनाशकारी सिद्ध होगा।

(ग) लोक साहित्य और पर्यावरण

लोक साहित्य प्रकृति और पर्यावरण का सबसे सहज एवं प्रामाणिक स्वर है। लोकगीत, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, कहावतें तथा लोक-रीतियाँ प्रकृति के साथ मनुष्य के गहरे संबंध को अभिव्यक्त करती हैं। भारतीय ग्रामीण समाज में ऋतुओं, वर्षा, नदियों, वृक्षों, पर्वतों तथा कृषि जीवन पर आधारित असंख्य लोकगीत आज भी प्रचलित हैं। वट सावित्री, तुलसी पूजा, सरहुल, करमा, छठ, हरियाली तीज तथा अन्य अनेक लोकपर्व प्रकृति संरक्षण और पर्यावरणीय संतुलन के सांस्कृतिक प्रतीक हैं **(शर्मा, 2025)**[7]। लोक साहित्य यह शिक्षा देता है कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका अभिन्न अंग है। यही कारण है कि लोक परंपराओं में वृक्षों, नदियों और पर्वतों को पूजनीय माना गया है। लोक साहित्य की यह पर्यावरणीय चेतना आज भी सतत विकास और प्रकृति संरक्षण की प्रेरणा प्रदान करती है।

(घ) जनजातीय साहित्य में प्रकृति चेतना

जनजातीय साहित्य पर्यावरणीय चेतना की सबसे सशक्त अभिव्यक्तियों में से एक है। आदिवासी समुदाय का जीवन जल, जंगल और जमीन से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनके लिए प्रकृति केवल संसाधन नहीं, बल्कि संस्कृति, आस्था, पहचान और अस्तित्व का आधार है। इसलिए जनजातीय साहित्य में पर्यावरण संरक्षण जीवन-दर्शन के रूप में उपस्थित है। झारखंड के प्रमुख साहित्यकार डॉ. रामदयाल मुंडा, रोज़ केरकेट्टा, वंदना टेटे, जसिंता केरकेट्टा, निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन तथा पीटर पॉल एक्का ने अपनी रचनाओं में जंगलों के विनाश, खनन, बाँध परियोजनाओं, विस्थापन तथा आदिवासी जीवन पर पड़ने वाले पर्यावरणीय प्रभावों का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। इन रचनाओं में प्रकृति एक जीवंत पात्र की तरह उपस्थित रहती है, जो मनुष्य के सुख-दुःख की सहभागी है। जनजातीय साहित्य आधुनिक

Copyright © IIJMR 2026, All rights reserved

ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026

विकास मॉडल की आलोचना करते हुए प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व और सामुदायिक जीवन की अवधारणा को स्थापित करता है **(सी. सुरेश, 2024)**[8]।

(ङ) समकालीन हिंदी साहित्यकारों की पर्यावरण संबंधी दृष्टि

समकालीन हिंदी साहित्यकार पर्यावरण को केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक दायित्व के रूप में देखते हैं। उनकी रचनाओं में जलवायु परिवर्तन, जल संकट, प्रदूषण, वनों की कटाई, खनन, जैव-विविधता का ह्रास तथा पर्यावरणीय न्याय जैसे विषय प्रमुखता से उभरते हैं। अज्ञेय ने प्रकृति और मनुष्य के आत्मीय संबंध को गहराई से अभिव्यक्त किया, जबकि महादेवी वर्मा ने पशु-पक्षियों और प्रकृति के प्रति करुणा एवं संवेदना का अद्वितीय चित्र प्रस्तुत किया। समकालीन साहित्यकार विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता पर बल देते हैं। विशेष रूप से झारखंड के साहित्यकारों ने जल, जंगल और जमीन के प्रश्नों को साहित्य के केंद्र में लाकर पर्यावरणीय विमर्श को नई दिशा प्रदान की है।

(च) साहित्य द्वारा जन-जागरण एवं पर्यावरण संरक्षण

साहित्य समाज में चेतना और परिवर्तन का प्रभावी माध्यम है। पर्यावरणीय साहित्य मनुष्य को यह समझाता है कि प्रकृति केवल आर्थिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवन की आधारशिला है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, लोकगीत और जनसंचार के विभिन्न माध्यमों से साहित्य पर्यावरण संरक्षण, वृक्षारोपण, जल संरक्षण, जैव-विविधता की रक्षा तथा प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग का संदेश देता है। साहित्य के माध्यम से समाज में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता, नैतिक उत्तरदायित्व तथा सामूहिक सहभागिता की भावना विकसित होती है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, सामाजिक आंदोलनों और जन-अभियानों में साहित्य का उपयोग पर्यावरणीय जागरूकता बढ़ाने के प्रभावी साधन के रूप में किया जा रहा है **(सीमा, 2023)**[9]। पर्यावरणीय कविता-पाठ, नाटक, लोकगीत और साहित्यिक गोष्ठियाँ लोगों को प्रकृति संरक्षण के लिए प्रेरित करती हैं।

इस प्रकार साहित्य पर्यावरणीय संकट का केवल साक्षी नहीं है, बल्कि उसके समाधान का सक्रिय सांस्कृतिक माध्यम भी है। यह मानव और प्रकृति के बीच संतुलित, संवेदनशील और उत्तरदायी संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देता है तथा पर्यावरण संरक्षण को सामाजिक आंदोलन का स्वरूप प्रदान करता है। वर्तमान समय में साहित्य की यह भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है, क्योंकि पर्यावरण की रक्षा केवल वैज्ञानिक उपायों से नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं, सांस्कृतिक मूल्यों और सामूहिक चेतना के विकास से ही संभव है।

निष्कर्ष

साहित्य और पर्यावरण का संबंध मानव सभ्यता के आरंभ से ही अत्यंत घनिष्ठ, जीवंत तथा परस्पर पूरक रहा है। साहित्य ने सदैव प्रकृति को केवल सौंदर्य, प्रेरणा अथवा भावाभिव्यक्ति का माध्यम नहीं

Copyright © IIJMR 2026, All rights reserved

ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026

माना, बल्कि उसे मानव जीवन, संस्कृति और सभ्यता के आधार के रूप में स्वीकार किया है। भारतीय साहित्यिक परंपरा से लेकर समकालीन साहित्य तक प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि मानव और पर्यावरण का अस्तित्व एक-दूसरे से अविभाज्य है। साहित्य प्रकृति के साथ मनुष्य के आत्मीय संबंधों को अभिव्यक्त करते हुए सह-अस्तित्व, संवेदनशीलता और उत्तरदायित्व की भावना को सुदृढ़ करता है।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, वनों की कटाई, जैव-विविधता का ह्रास, प्रदूषण, अनियंत्रित शहरीकरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने वैश्विक पर्यावरणीय संकट को गंभीर रूप प्रदान कर दिया है। ऐसी परिस्थितियों में साहित्य की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। साहित्य केवल पर्यावरणीय समस्याओं का चित्रण नहीं करता, बल्कि उनके कारणों का विश्लेषण करते हुए समाज को प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाता है तथा पर्यावरण संरक्षण के लिए नैतिक प्रेरणा प्रदान करता है। कविता, कहानी, उपन्यास, लोक साहित्य और आदिवासी साहित्य के माध्यम से पर्यावरणीय चेतना का व्यापक प्रसार संभव हुआ है। विशेष रूप से पर्यावरणीय आलोचना ने साहित्य को प्रकृति-केंद्रित दृष्टिकोण प्रदान करते हुए पर्यावरण संरक्षण के वैचारिक आधार को सुदृढ़ किया है।

पर्यावरण संरक्षण केवल सरकारों, वैज्ञानिकों अथवा नीति-निर्माताओं का दायित्व नहीं है, बल्कि यह प्रत्येक नागरिक का सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक उत्तरदायित्व भी है। प्रकृति के प्रति सम्मान, संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, जैव-विविधता का संरक्षण, जल एवं वन-संपदा की रक्षा तथा पर्यावरण-अनुकूल जीवनशैली अपनाना आज की अनिवार्य आवश्यकता है। साहित्य इन मूल्यों को समाज में स्थापित करने का प्रभावी माध्यम बनकर व्यक्ति और समुदाय दोनों को पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का बोध कराता है।

भविष्य की दृष्टि से पर्यावरणीय चेतना का विकास शिक्षा, साहित्य, संस्कृति और जनसंचार के समन्वित प्रयासों से ही संभव है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, साहित्यिक संस्थाओं तथा सांस्कृतिक मंचों के माध्यम से पर्यावरण-संवेदनशील साहित्य का व्यापक प्रसार किया जाना चाहिए। विशेष रूप से युवा पीढ़ी में प्रकृति के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ-साथ सांस्कृतिक एवं नैतिक संवेदनशीलता विकसित करना समय की प्रमुख आवश्यकता है। सतत विकास के लक्ष्य तभी सार्थक हो सकते हैं जब आर्थिक प्रगति, सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय संतुलन के बीच समन्वय स्थापित किया जाए। इस दिशा में साहित्य समाज को मानवीय मूल्यों, पारिस्थितिक संतुलन तथा प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व की प्रेरणा प्रदान करता है। अतः साहित्य पर्यावरणीय चेतना का केवल दर्पण नहीं, बल्कि उसके निर्माण और संरक्षण का सशक्त सांस्कृतिक माध्यम है, जो वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए एक सुरक्षित, संतुलित और टिकाऊ भविष्य के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सन्दर्भ सूची

1. उपाध्याय, अखिलानन्द. "जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय मुद्दे." आइडियलिस्टिक जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन प्रोग्रेसिव स्पेक्ट्रम्स (आईजेएआरपीएस) ई-आईएसएसएन–2583-6986 3.11 (2024): 130-137.

Copyright © IIJMR 2026, All rights reserved

ISSN: 3108-0766 (Online)
Volume (2), Issue (1)
January - March, 2026

2. चतुर्वेदी, मंजुला, और सिंह, सुनीता. "समकालीन हिंदी साहित्य में पर्यावरण (वर्तमान परिवेश)." रिसर्च रिव्यू इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी 8.8 (2023): 99-103.
3. जोशी, कीरन. "समकालीन हिन्दी साहित्य में विमर्शों का बहुआयामी परिप्रेक्ष्य: दलित, स्त्री, आदिवासी और पर्यावरण चेतना का तुलनात्मक अध्ययन." रिसर्च रिव्यू जर्नल ऑफ सोशल साइंस 5.1 (2025): 215-221.
4. टेटे, वंदना. आदिवासी साहित्य: परंपरा और प्रयोजन. प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, 2013.
5. द्विवेदी, सीमा, एवं अग्निहोत्री, मंजू. "जलवायु परिवर्तन और हरित ऊर्जा." आइडियलिस्टिक जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन प्रोग्रेसिव स्पेक्ट्रम्स (आईजेएआरपीएस) ई-आईएसएसएन–2583-6986 5.01 (2026): 108-115.
6. भट्ट, आर०सी०. "वैदिक काल में पर्यावरण संरक्षण." नवीन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी साइंसेज (एनआईजेएमएस) 1.4 (2025): 39-43.
7. शर्मा, ममता. "पर्यावरण संरक्षण के सन्दर्भ में भारतीय दर्शन." नवीन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी साइंसेज (एनआईजेएमएस) 1.4 (2025): 08-13.
8. सी. सुरेश. "समकालीन आदिवासी कविताओं में पर्यावरण." अनेकांत: क्रिस्टु जयंती हिंदी शोध पत्रिका (2024): 11-18.
9. सीमा, सोनी. "पंत के काव्य में मार्क्सवाद, प्रगतिवाद और पर्यावरण चेतना." शोध उत्कर्ष 1.2 (2023): 21-22.

****

Copyright © IIJMR 2026, All rights reserved